

शोध में नैतिकता: आवश्यकता, महत्व एवं नैतिक मापदण्ड

प्रहलाद सिंह अहलूवालिया, सम्पादक, शोधबोधालय, हिसार, हरियाणा

सार (Abstract)

शोध का मूल प्रयोजन सत्य की खोज और समाज के हित में ज्ञान का सृजन है। यह प्रयोजन तभी सिद्ध होता है जब शोध-प्रक्रिया ईमानदारी, पारदर्शिता, सहभागियों के सम्मान और सामाजिक उत्तरदायित्व पर टिकी हो। प्रस्तुत अध्ययन विश्लेषणात्मक साहित्यिक शोध-पद्धति से शोध-नैतिकता की आवश्यकता, महत्व और नैतिक मापदण्डों का परीक्षण करता है। इसमें 1947 से 2022 के बीच प्रकाशित 68 स्रोतों का विषयवस्तु-आधारित विश्लेषण किया गया है। इन स्रोतों में पुस्तकें, अंतर्राष्ट्रीय संहिताएँ, राष्ट्रीय दिशानिर्देश और सहकर्म-समीक्षित शोध-पत्र शामिल हैं। अध्ययन के प्रमुख निष्कर्ष चार हैं। **पहला**, नैतिक मानकों का विकास ऐतिहासिक त्रासदियों की प्रतिक्रिया में हुआ है, और भारतीय चिंतन-परम्परा में इसके बीज पहले से मौजूद हैं। **दूसरा**, सर्वेक्षण-आधारित साक्ष्य बताते हैं कि गढ़त और मिथ्याकरण अपेक्षाकृत कम हैं, पर संदिग्ध शोध-व्यवहार (Questionable Research Practices) बहुत व्यापक हैं। **तीसरा**, अधिकांश नैतिक चूकें सुनियोजित धोखाधड़ी से नहीं, बल्कि प्रकाशन-दबाव, अपर्याप्त प्रशिक्षण और संस्थागत कमजोरियों से जन्म लेती हैं। **चौथा**, नियामक कठोरता और शोधकर्ता के आत्म-अनुशासन के बीच संतुलन अनिवार्य है। अध्ययन के अंत में लेखक ने "पंच-स मॉडल" (सत्य, सम्मति, सुरक्षा, सुशासन, समाज-हित) प्रस्तावित किया है, जो हिन्दी-भाषी शोध-जगत के लिए सरल और व्यावहारिक नैतिक-ढाँचा प्रस्तुत करता है।

कुंजी शब्द: शोध-नैतिकता, शोध-सत्यनिष्ठा, सूचित सहमति, साहित्यिक चोरी, संदिग्ध शोध-व्यवहार, पंच-स मॉडल

1. प्रस्तावना

मानव सभ्यता की प्रगति का इतिहास शोध और अनुसंधान की परम्परा का भी इतिहास है। चिकित्सा में टीके और प्रतिजैविक, कृषि में उन्नत बीज, और सामाजिक विज्ञान में नीति-निर्माण के प्रमाण, सब व्यवस्थित शोध से ही निकले हैं। शोध को सामान्यतः समस्या के समाधान के लिए तथ्यों के व्यवस्थित संकलन, विश्लेषण और निर्वचन की प्रक्रिया माना जाता है [1,2]। किंतु ज्ञान का सृजन किसी नैतिक शून्य में नहीं होता। शोधकर्ता किसी मनुष्य, समुदाय, पशु, पर्यावरण या समाज की स्मृतियों और अनुभवों को अपना विषय बनाता है। इसलिए "क्या जाना जा सकता है" के साथ यह प्रश्न भी उतना ही ज़रूरी है कि "किस तरीके से जानना उचित है।"

मर्टन ने आधुनिक विज्ञान की चार आचार-संहिताएँ बताई थीं: साझा स्वामित्व, सार्वभौमिकता, निस्स्वार्थता और संगठित संशयवाद [1]। रेस्निक के अनुसार विज्ञान की नैतिकता केवल नियमों की सूची नहीं, बल्कि उन मूल्यों का समुच्चय है जो ज्ञान की विश्वसनीयता और सामाजिक भरोसे की रक्षा करते हैं [3]। शामू और रेस्निक इसे "शोध का उत्तरदायी संचालन" कहते हैं,

जिसमें आँकड़ों का प्रबंधन, लेखकत्व, सहकर्मि-समीक्षा, हितों के टकराव और मानव-सहभागियों की सुरक्षा जैसे विषय आते हैं [4]।

शोध-सत्यनिष्ठा की अवधारणा में तीन गंभीर अपराधों को अलग से पहचाना गया है: गढ़ंत (Fabrication), मिथ्याकरण (Falsification) और साहित्यिक चोरी (Plagiarism), जिन्हें संक्षेप में FFP कहा जाता है [5]। इनके साथ "संदिग्ध शोध-व्यवहार" का एक बड़ा धूसर क्षेत्र भी है, जैसे चयनात्मक रिपोर्टिंग, अनुचित लेखकत्व और आँकड़ों का मनचाहा विश्लेषण। फ्रानेली के मेटा-विश्लेषण के अनुसार लगभग 2% वैज्ञानिकों ने स्वयं गढ़ंत या मिथ्याकरण करना स्वीकार किया, जबकि लगभग 14% ने अपने सहकर्मियों को ऐसा करते देखने की बात कही। संदिग्ध शोध-व्यवहार की स्वीकारोक्ति लगभग 34% और सहकर्मियों में देखे जाने की सूचना लगभग 72% रही [6]। जैव-चिकित्सा शोध-पत्रों की वापसी (Retraction) के अध्ययन में, 2,047 वापस लिए गए लेखों में से लगभग 67% के पीछे किसी न किसी प्रकार का कदाचार पाया गया। इनमें धोखाधड़ी या संदिग्ध धोखाधड़ी 43%, दोहरा प्रकाशन 14% और साहित्यिक चोरी लगभग 10% थी। त्रुटि जैसे कारण केवल लगभग 21% में थे [7]। अमेरिका में 3,247 वैज्ञानिकों के एक राष्ट्रीय सर्वेक्षण में एक-तिहाई ने पिछले तीन वर्षों में कम-से-कम एक ऐसे अनुचित आचरण की बात मानी जिसे शोध-जगत गंभीर मानता है [8]।

ये आँकड़े दो निष्कर्षों की ओर संकेत करते हैं। पहला, शोध-कदाचार कोई अपवाद-मात्र नहीं है। दूसरा, इसका समाधान केवल दंड में नहीं, बल्कि शिक्षा, संस्थागत सुधार और मूल्य-आधारित संस्कृति में खोजना होगा। हिन्दी-भाषी शोध-समुदाय के लिए यह विषय और भी प्रासंगिक है, क्योंकि शोध-नैतिकता पर उपलब्ध अधिकांश सामग्री अंग्रेजी में है और सामाजिक विज्ञान व मानविकी के शोधार्थियों तक उसकी पहुँच सीमित रहती है। यह अध्ययन इसी अंतराल को भरने का प्रयास है।

2. अध्ययन के उद्देश्य एवं शोध-प्रश्न

उद्देश्य

- शोध-नैतिकता की अवधारणा और उसके दार्शनिक व ऐतिहासिक आधार का विश्लेषण करना।
- शोध में नैतिकता की आवश्यकता को उपलब्ध साक्ष्यों व आँकड़ों के आधार पर स्पष्ट करना।
- शोध-नैतिकता के महत्व को वैज्ञानिक, सामाजिक और संस्थागत स्तरों पर परखना।
- प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय व भारतीय नैतिक मापदण्डों का तुलनात्मक विवेचन करना।
- संबंधित शोध-समीक्षाओं के परिणामों और विभिन्न दृष्टिकोणों का समालोचनात्मक विश्लेषण करना।
- एक व्यावहारिक नैतिक-ढाँचा प्रस्तावित करना।

शोध-प्रश्न

- प्र.1 शोध-नैतिकता के मानक किन ऐतिहासिक और वैचारिक परिस्थितियों से विकसित हुए?
- प्र.2 उपलब्ध अनुभवजन्य साक्ष्य शोध-कदाचार और संदिग्ध शोध-व्यवहार की किस सीमा तक पुष्टि करते हैं?

- प्र.3 नैतिक मापदण्डों के प्रमुख घटक क्या हैं और वे शोध-प्रक्रिया के किन चरणों पर लागू होते हैं?
- प्र.4 नैतिकता-विषयक बहसों में कौन-से परस्पर-विरोधी दृष्टिकोण हैं और उनका संतुलित समाधान क्या हो सकता है?

3. शोध-पद्धति

यह अध्ययन विश्लेषणात्मक साहित्यिक शोध (Analytical Literary Research) पर आधारित है। इसमें प्राथमिक आँकड़े एकत्र नहीं किए गए। पहले से प्रकाशित सामग्री का समालोचनात्मक पाठ, विषयवस्तु-विश्लेषण और तुलनात्मक संश्लेषण किया गया है। दस्तावेज-आधारित और विषयवस्तु-विश्लेषण की यह पद्धति सामाजिक शोध में मान्य मानी जाती है [9]। नीतिशास्त्रीय विषयों में यह इसलिए उपयुक्त है कि नैतिक मानकों का स्वरूप संहिताओं, दिशानिर्देशों और वैचारिक बहसों में ही अभिव्यक्त होता है [10,11]।

अध्ययन को सरल और पारदर्शी रखने के लिए चार चरण अपनाए गए:

- **स्रोत-संग्रह:** शोध-नैतिकता, शोध-सत्यनिष्ठा, सूचित सहमति, प्रकाशन-नैतिकता और शोध-कदाचार से संबंधित पुस्तकों, संहिताओं और शोध-पत्रों का चयन।
- **चयन-मानदण्ड:** केवल वे स्रोत रखे गए जो 2023 से पूर्व प्रकाशित हैं, प्रामाणिक प्रकाशक या संस्था से आए हैं और सीधे विषय से संबंधित हैं।
- **विषय-वर्गीकरण:** सामग्री को ऐतिहासिक विकास, आवश्यकता के साक्ष्य, नैतिक मापदण्ड और दृष्टिकोण-विवाद जैसे विषय-समूहों में बाँटा गया।
- **तुलनात्मक संश्लेषण:** प्रत्येक समूह के निष्कर्षों की परस्पर तुलना, विरोधाभासों की पहचान और उन पर आधारित विश्लेषण।

सीमाएँ: यह अध्ययन द्वितीयक स्रोतों तक सीमित है, अतः इसके आँकड़े मूल सर्वेक्षणों की पद्धतिगत सीमाओं से प्रभावित हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त अधिकांश उपलब्ध साक्ष्य पश्चिमी देशों और जैव-चिकित्सा क्षेत्र से आए हैं। भारतीय संदर्भ के अनुभवजन्य आँकड़े अपेक्षाकृत कम हैं, और इसे आगे के शोध की आवश्यकता के रूप में भी देखा जाना चाहिए।

4. शोध-नैतिकता के वैचारिक एवं दार्शनिक आधार

4.1 भारतीय चिंतन-परम्परा

भारतीय ज्ञान-परम्परा में ज्ञान और आचरण का सम्बन्ध सदा घनिष्ठ रहा है। उपनिषदों में "सत्यमेव जयते" का उद्घोष सत्य को ही अंतिम विजय का आधार बताता है [12]। सत्य-निष्ठा की यही भावना शोधकर्ता के लिए मूल नैतिक आधार है, क्योंकि झूठे आँकड़ों से ज्ञान का निर्माण नहीं हो सकता। इसी परम्परा में अहिंसा का सिद्धांत भी है, जो आधुनिक शोध-नैतिकता के "हानि न पहुँचाओ" वाले सिद्धांत से मेल खाता है।

चिकित्सा-शास्त्र के प्राचीन ग्रंथों में शोध-नैतिकता की झलक विशेष रूप से मिलती है। चरक संहिता में चिकित्सक के आचरण, गुरु-शिष्य के अनुशासन और रोगी के प्रति उत्तरदायित्व का विस्तृत वर्णन है [13]। सुश्रुत संहिता में शल्य-प्रशिक्षण के दौरान सीखने वाले के दायित्वों और रोगी के हित की प्राथमिकता पर बल दिया गया है [14]। ये ग्रंथ आधुनिक "सूचित सहमति" की औपचारिक प्रक्रिया की बात नहीं करते, पर उनमें रोगी-कल्याण की प्राथमिकता और ज्ञान के दुरुपयोग पर रोक की मूल भावना अवश्य दिखाई देती है।

आधुनिक भारत में गांधी जी ने अपनी आत्मकथा का उपशीर्षक ही "सत्य के प्रयोग" रखा। वे जीवन को एक निरंतर प्रयोगशाला मानते थे और प्रयोग में सत्य तथा साधन की शुद्धता पर बल देते थे [15]। "साध्य और साधन की शुद्धता" का यह विचार शोध-नैतिकता के केंद्रीय प्रश्न का सटीक उत्तर देता है: अच्छा उद्देश्य अनैतिक तरीकों को उचित नहीं ठहराता।

4.2 पाश्चात्य नीतिशास्त्रीय आधार

आधुनिक जैव-नैतिकता का सर्वाधिक प्रचलित ढाँचा बीचैम्प और चाइल्ड्रेस के चार सिद्धांतों पर आधारित है: **स्वायत्तता** (व्यक्ति के अपने निर्णय का अधिकार), **अहानिकरता** (हानि न पहुँचाना), **उपकारिता** (हित करना) और **न्याय** (लाभ व बोझ का समान वितरण) [16]। ये सिद्धांत कर्तव्य-मूलक (Kantian) और परिणाम-मूलक (Utilitarian) दोनों धाराओं का समन्वय हैं। मनुष्य को केवल साधन नहीं, साध्य भी माना जाए, यह कर्तव्य-मूलक विचार सहमति और गरिमा के सिद्धांतों का आधार बनता है। अधिकतम लोगों का अधिकतम हित, यह परिणाम-मूलक विचार जोखिम-लाभ आकलन को दिशा देता है।

4.3 तुलनात्मक टिप्पणी

भारतीय और पाश्चात्य दोनों दृष्टियों की तुलना करने पर एक रोचक अंतर दिखता है। पाश्चात्य परम्परा व्यक्ति के अधिकारों से आरंभ करती है, जबकि भारतीय परम्परा शोधकर्ता के कर्तव्यों से। दोनों का लक्ष्य एक ही है, यानी सहभागी और समाज की सुरक्षा। अधिकार-आधारित ढाँचा विधिक प्रवर्तन में सुविधाजनक है, और कर्तव्य-आधारित ढाँचा आंतरिक नैतिक प्रेरणा का निर्माण करता है। लेखक का मत है कि प्रभावी शोध-नैतिकता के लिए इन दोनों का समन्वय जरूरी है: संस्थागत नियम बाहरी अनुशासन देते हैं और मूल्य-बोध आंतरिक अनुशासन।

5. ऐतिहासिक विकास एवं संस्थागत ढाँचा

5.1 नूरेमबर्ग संहिता (1947)

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद नाज़ी चिकित्सकों के मुकदमे में मानव-प्रयोगों की भयावहता उजागर हुई। कैदियों पर बिना सहमति के अंग-विच्छेदन, ठंड और ऊँचाई के प्रयोग किए गए थे। इसके परिणामस्वरूप 1947 में **नूरेमबर्ग संहिता** बनी। इसका पहला और सबसे प्रसिद्ध सूत्र है कि मानव-सहभागी की स्वैच्छिक सहमति "नितांत अनिवार्य" है। संहिता में कुल दस सिद्धांत हैं,

जिनमें सहमति के साथ हानि से बचाव, सहभागी को प्रयोग से हटने की स्वतंत्रता और वैज्ञानिक औचित्य की शर्तें शामिल हैं [17]।

5.2 बीचर का प्रकाशन और टस्केगी अध्ययन

नूरेमबर्ग संहिता के बाद यह माना जाने लगा था कि ऐसे अनाचार केवल तानाशाही शासनों की देन हैं। हेनरी बीचर के 1966 के लेख ने इस भ्रम को तोड़ा। उन्होंने अमेरिका के प्रतिष्ठित संस्थानों में हुए अध्ययनों में से 22 ऐसे उदाहरण गिनाए जिनमें सहभागियों को जोखिम में डाला गया था [18]। इसी दौर की एक और घटना **टस्केगी सिफलिस अध्ययन (1932–1972)** है। इसमें अफ्रीकी-अमेरिकी मूल के 600 पुरुषों को शामिल किया गया, जिनमें 399 सिफलिस-ग्रस्त थे और 201 नियंत्रण-समूह में। पेनिसिलिन उपलब्ध हो जाने के बाद भी उपचार रोका गया ताकि रोग की प्राकृतिक प्रगति का अध्ययन हो सके [19]। यह प्रकरण शोध में नस्लीय भेदभाव और असमान शक्ति-संबंधों का चिरस्थायी उदाहरण है। रॉथमैन ने बाद में बीचर के योगदान की पुनर्समीक्षा करते हुए दिखाया कि नैतिक सुधार की प्रक्रिया केवल संहिताओं से नहीं, बल्कि सार्वजनिक बहस और संस्थागत दबाव से भी आगे बढ़ती है [20]।

5.3 बेलमॉन्ट रिपोर्ट (1979)

टस्केगी के खुलासे के बाद अमेरिका में गठित राष्ट्रीय आयोग ने 1979 में **बेलमॉन्ट रिपोर्ट** प्रस्तुत की। इसने तीन मूल सिद्धांत स्थापित किए: **व्यक्तियों के प्रति सम्मान** (सहमति और स्वायत्तता), **उपकारिता** (हानि-न्यूनीकरण और लाभ-अधिकतमीकरण) तथा **न्याय** (सहभागियों के चयन में निष्पक्षता) [21]। संस्थागत नैतिकता-समितियों (IRB) की व्यवस्था इसी रिपोर्ट की देन है।

5.4 हेलसिंकी घोषणा और उसके बाद की संहिताएँ

विश्व चिकित्सा संघ ने 1964 में **हेलसिंकी घोषणा** जारी की और तब से इसे कई बार संशोधित किया है। यह मानव-सहभागियों वाले चिकित्सा-शोध का सर्वाधिक प्रभावशाली अंतर्राष्ट्रीय दस्तावेज माना जाता है। 2013 के संशोधित रूप में स्वतंत्र नैतिक समीक्षा, वंचित समूहों की विशेष सुरक्षा और अध्ययन-पंजीकरण व परिणाम-प्रकाशन की अपेक्षा जैसे बिंदु स्पष्ट किए गए [22]। इमैनुएल, वेंडलर और ग्रैडी ने इन संहिताओं के निचोड़ से "नैतिक क्लिनिकल शोध" की सात शर्तें प्रस्तावित कीं: सामाजिक या वैज्ञानिक मूल्य, वैज्ञानिक वैधता, निष्पक्ष सहभागी-चयन, अनुकूल जोखिम-लाभ अनुपात, स्वतंत्र समीक्षा, सूचित सहमति और सहभागियों के प्रति सतत सम्मान [23]। CIOMS के 2016 के दिशानिर्देश (कुल 25 दिशानिर्देश) इन सिद्धांतों को स्वास्थ्य-शोध के विविध संदर्भों, विशेषतः निम्न और मध्यम आय वाले देशों, में लागू करने का मार्गदर्शन देते हैं [24]।

5.5 भारत में संस्थागत व्यवस्था

भारत में भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद (ICMR) ने 1980 में शोध-नैतिकता पर पहला नीति-वक्तव्य दिया, फिर 2000 और 2006 में दिशानिर्देश जारी किए, और 2017 में "मानव-सहभागियों से संबंधित जैव-चिकित्सा एवं स्वास्थ्य शोध के लिए राष्ट्रीय नैतिक दिशानिर्देश" प्रकाशित किए। इनमें 12 सामान्य सिद्धांत बताए गए हैं: अनिवार्यता, स्वैच्छिकता, अशोषण, सामाजिक उत्तरदायित्व, निजता एवं गोपनीयता, जोखिम-न्यूनीकरण, व्यावसायिक क्षमता, लाभ-अधिकतमीकरण, संस्थागत व्यवस्था, पारदर्शिता व जवाबदेही, उत्तरदायित्व की समग्रता और पर्यावरण-संरक्षण [25]।

अकादमिक सत्यनिष्ठा के क्षेत्र में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने 2018 में उच्च शिक्षण संस्थानों के लिए "शैक्षणिक सत्यनिष्ठा को बढ़ावा एवं साहित्यिक चोरी की रोकथाम" संबंधी विनियम अधिसूचित किए। इनमें साहित्यिक चोरी की समानता-सीमा के आधार पर चार स्तर (लगभग 10% तक कोई दंड नहीं, 10–40%, 40–60% और 60% से अधिक) निर्धारित किए गए हैं। साथ ही संस्थागत और विभागीय शैक्षणिक-सत्यनिष्ठा पैनल बनाने का प्रावधान भी है [26]। औषधि परीक्षणों के लिए नई औषधि एवं क्लिनिकल परीक्षण नियम, 2019 में नैतिकता समितियों के पंजीकरण और सहभागियों की क्षतिपूर्ति के प्रावधान शामिल हैं [27]।

वैश्विक स्तर पर 2010 का सिंगापुर वक्तव्य शोध-सत्यनिष्ठा के चार सिद्धांत (ईमानदारी, जवाबदेही, व्यावसायिक शिष्टता व निष्पक्षता, तथा उत्तम प्रबंधन) और चौदह उत्तरदायित्व निर्धारित करता है [28]। यूरोपीय अकादमियों की संहिता (2017) विश्वसनीयता, ईमानदारी, सम्मान और जवाबदेही को आधार-स्तंभ मानती है [29]।

तालिका 1: शोध-नैतिकता के प्रमुख दस्तावेजों का कालक्रम

वर्ष	दस्तावेज / घटना	मूल योगदान
1947	नूरेमबर्ग संहिता [17]	स्वैच्छिक सहमति की अनिवार्यता; दस सिद्धांत
1964 (संशोधित 2013)	हेलसिंकी घोषणा [22]	स्वतंत्र नैतिक समीक्षा; वंचित समूहों की सुरक्षा
1966	बीचर का लेख [18]	22 अनैतिक अध्ययनों का प्रकटीकरण
1979	बेलमॉन्ट रिपोर्ट [21]	सम्मान, उपकारिता, न्याय के तीन सिद्धांत
2000	इमैनुएल आदि का ढाँचा [23]	नैतिक क्लिनिकल शोध की सात शर्तें
2010	सिंगापुर वक्तव्य [28]	चार सिद्धांत, चौदह उत्तरदायित्व
2016	CIOMS दिशानिर्देश [24]	25 दिशानिर्देश; निम्न-आय देशों के लिए मार्गदर्शन
2017	ICMR दिशानिर्देश [25]	12 सामान्य सिद्धांत
2018	UGC विनियम [26]	साहित्यिक चोरी के चार स्तर; सत्यनिष्ठा पैनल

2019	नई औषधि एवं क्लिनिकल परीक्षण नियम [27]	नैतिकता समिति पंजीकरण; क्षतिपूर्ति
------	--	------------------------------------

6. शोध में नैतिकता की आवश्यकता: साक्ष्य एवं विश्लेषण

6.1 उल्लंघन के चर्चित प्रकरण

मिलग्राम का आज्ञापालन अध्ययन (1963): 40 पुरुष सहभागियों में से 26 (65%) ने अधिकारी के निर्देश पर सर्वोच्च 450 वोल्ट का "झटका" देने की सीमा तक पहुँच बनाई। यह अध्ययन मनोविज्ञान की एक महत्वपूर्ण खोज थी, पर सहभागियों को गहरे मानसिक तनाव और छलपूर्ण वातावरण से गुजरना पड़ा [30]। यह सामाजिक-व्यवहार विज्ञान में "छल के औचित्य" और "मानसिक हानि" की बहस का केंद्र बना।

फ़ेसबुक भावनात्मक संक्रमण अध्ययन (2014): इसमें 689,003 उपयोगकर्ताओं की न्यूज फ़ीड में एक सप्ताह तक भावनात्मक सामग्री बदली गई और देखा गया कि उनकी पोस्टों की भावनात्मक अभिव्यक्ति पर क्या असर पड़ता है [31]। प्रकाशक पत्रिका ने बाद में "चिंता की संपादकीय अभिव्यक्ति" जारी की, क्योंकि स्पष्ट नहीं था कि आँकड़ा-संग्रह में सूचित सहमति और सहभागी के हट जाने के अधिकार का पालन हुआ या नहीं [32]। यह प्रकरण दर्शाता है कि डिजिटल युग में नैतिकता के प्रश्न नई शक्तों में लौट आते हैं।

वेकफ़ील्ड प्रकरण: 1998 में द लैंसेट में 12 बच्चों पर आधारित एक शोध-पत्र छपा जिसने टीकाकरण और स्वलीनता (ऑटिज़्म) के बीच संबंध का संकेत दिया। बाद की जाँच में शोध-प्रक्रिया की गंभीर अनियमितताएँ सामने आईं और पत्रिका ने 2010 में पत्र औपचारिक रूप से वापस ले लिया [33]। पत्र के प्रभाव से कई देशों में टीकाकरण की दर गिरी, यानी एक नैतिक चूक का स्वास्थ्य पर सीधा सामाजिक दुष्प्रभाव पड़ा।

ह्वांग वू-सुक प्रकरण: 2005-06 में स्टेम-सेल क्लोनिंग पर छपे प्रतिष्ठित शोध-पत्रों के आँकड़े बनावटी सिद्ध हुए और साइंस पत्रिका ने उन्हें वापस लिया [34]। इस प्रकरण ने दिखाया कि शीर्ष स्तर की सहकर्म-समीक्षा भी सुनियोजित धोखाधड़ी को हमेशा नहीं पकड़ पाती।

6.2 सर्वेक्षण-आधारित साक्ष्य

व्यक्तिगत प्रकरणों से आगे बढ़कर व्यापक अनुभवजन्य साक्ष्य देखें तो चित्र इस प्रकार बनता है:

- **संदिग्ध शोध-व्यवहार की व्यापकता:** जॉन, लोवेनस्टीन और प्रेलेक ने मनोवैज्ञानिकों के सर्वेक्षण में सच बोलने के लिए प्रोत्साहन की पद्धति अपनाई। लगभग 63% ने स्वीकार किया कि उन्होंने किसी अध्ययन के सभी आश्रित चरों की रिपोर्ट नहीं की, और लगभग 46% ने केवल "काम कर गए" परिणामों वाले अध्ययन बताने की बात मानी [35]।
- **साहित्यिक चोरी:** पुपोवाक और फ़ानेली के मेटा-विश्लेषण के अनुसार लगभग 1.7% वैज्ञानिकों ने स्वयं साहित्यिक चोरी स्वीकार की और लगभग 30% ने दूसरों में ऐसा देखने की बात कही [36]।

- **नीदरलैंड्स का व्यापक सर्वेक्षण (2022):** 6,813 शैक्षणिक शोधकर्ताओं में से लगभग 4.3% ने गढ़त या मिथ्याकरण में संलिप्तता की बात मानी, जबकि लगभग 51.3% ने कम-से-कम एक संदिग्ध शोध-व्यवहार को बार-बार अपनाया। यह सर्वेक्षण आँकड़ों के प्रमाण-आधारित हालिया चित्र के रूप में उल्लेखनीय है [37]।
- **प्रकाशन-दबाव:** चिकित्सा-वैज्ञानिकों पर हुए अध्ययन में उच्च प्रकाशन-दबाव और स्व-रिपोर्टित कदाचार के बीच सकारात्मक संबंध पाया गया [38]।
- **आदर्श और व्यवहार का अंतर:** "प्रामाणिक असंगति" (Normative Dissonance) पर अंडरसन आदि के अध्ययन में वैज्ञानिकों ने माना कि वे विज्ञान के मानकों का जितना समर्थन करते हैं, व्यवहार में उतना पालन नहीं होता, और उन्हें लगता है कि दूसरे और भी कम पालन करते हैं [39]।
- **गंभीरता बनाम बारंबारता:** विश्व शोध-सत्यनिष्ठा सम्मेलनों के प्रतिभागियों के सर्वेक्षण में गढ़त सबसे गंभीर माना गया, फिर भी व्यवहार में सबसे अधिक होने वाली चूकें अपेक्षाकृत "छोटी" थीं, जैसे चयनात्मक उद्धरण और अध्ययन की सीमाओं की अपर्याप्त रिपोर्टिंग [40]।

6.3 पुनरुत्पादनीयता का संकट

नैतिक चूकों का एक अप्रत्यक्ष परिणाम पुनरुत्पादनीयता का संकट है। नेचर के 1,576 शोधकर्ताओं के सर्वेक्षण में 70% से अधिक ने दूसरों के प्रयोग दोहराने में विफलता की बात कही, और आधे से अधिक ने अपने ही प्रयोग दोहरा न पाने की [41]। मनोविज्ञान के 100 अध्ययनों की सामूहिक पुनरावृत्ति में मूल अध्ययनों में से 97% ने सांख्यिकीय रूप से सार्थक परिणाम दिए थे, जबकि पुनरावृत्ति में केवल 36% ने; प्रभाव का औसत आकार भी लगभग आधा रह गया [42]। इयोनिसिस ने सैद्धांतिक तर्क से दिखाया कि छोटे नमूने, लचीले विश्लेषण और पूर्वाग्रह की स्थितियों में प्रकाशित निष्कर्षों में झूठे निष्कर्षों की संभावना बढ़ जाती है [43]। स्मिथ ने कदाचार की तुलना "कुएँ में ज़हर घोलने" से की, क्योंकि इसका असर एक शोध-पत्र तक सीमित नहीं रहता, बल्कि पूरे ज्ञान-भंडार पर भरोसे को खोखला करता है [44]।

तालिका 2: शोध-कदाचार की व्यापकता — चयनित साक्ष्य

अध्ययन	नमूना / विधि	मुख्य निष्कर्ष
फ़ानेली (2009) [6]	18 सर्वेक्षणों का मेटा-विश्लेषण	≈2% ने गढ़त/मिथ्याकरण स्वीकारा; ≈14% ने दूसरों में देखा; ≈34% ने संदिग्ध व्यवहार स्वीकारा
मार्टिन्सन आदि (2005) [8]	3,247 अमेरिकी वैज्ञानिक	≈33% ने कम-से-कम एक गंभीर अनुचित व्यवहार माना
कैंग आदि (2012) [7]	2,047 वापस लिए गए लेख	≈67% में कदाचार; धोखाधड़ी 43%, दोहरा प्रकाशन 14%, साहित्यिक चोरी ≈10%

जॉन आदि (2012) [35]	मनोवैज्ञानिकों का प्रोत्साहन-आधारित सर्वेक्षण	≈63% ने सभी आश्रित चर रिपोर्ट नहीं किए
पुपोवाक व फ़ानेली (2015) [36]	सर्वेक्षणों का मेटा-विश्लेषण	≈1.7% ने स्वयं स्वीकारा; ≈30% ने दूसरों में देखा
गोपालकृष्ण आदि (2022) [37]	6,813 शोधकर्ता (नीदरलैंड्स)	≈4.3% गढ़त/मिथ्याकरण; ≈51.3% बार-बार संदिग्ध व्यवहार
बेकर (2016) [41]	1,576 शोधकर्ता	70% से अधिक दूसरों का प्रयोग दोहरा न सके
ओपन साइंस कोलैबोरेशन (2015) [42]	100 मनोविज्ञान अध्ययन	मूल 97% सार्थक बनाम पुनरावृत्ति 36%

6.4 आवश्यकता का विश्लेषण

उपर्युक्त साक्ष्य से शोध-नैतिकता की आवश्यकता के चार आयाम उभरते हैं:

- **सहभागी-सुरक्षा:** जहाँ मनुष्य या पशु शोध के विषय हैं, वहाँ नैतिकता उनकी शारीरिक और मानसिक सुरक्षा का न्यूनतम कवच है। इसमें सहमति, निजता और हानि-निवारण मूल हैं।
- **ज्ञान की विश्वसनीयता:** ग़लत या पक्षपाती परिणाम नीतियों, उपचारों और आगे के शोध को भटकाते हैं। वेकफ़्रील्ड प्रकरण इसका जीवंत उदाहरण है।
- **संसाधनों की रक्षा:** सार्वजनिक धन से चलने वाला शोध जब ग़लत परिणाम देता है, तो उसका आर्थिक और सामाजिक मूल्य नष्ट होता है। वापस लिए गए शोध-पत्रों पर बाद के शोध का व्यय भी व्यर्थ हो जाता है।
- **शोधकर्ता-समुदाय की साख:** शोध-कदाचार से समाज का विज्ञान में भरोसा टूटता है, जिसका खामियाज़ा ईमानदार शोधकर्ताओं को भी भुगतना पड़ता है।

7. शोध-नैतिकता का महत्व

वैज्ञानिक महत्व: नैतिकता शोध की गुणवत्ता से अलग विषय नहीं है, वह उसका अभिन्न अंग है। पुनरुत्पादनीय विज्ञान की माँग करने वाले घोषणापत्र में पूर्व-पंजीकरण, पारदर्शी रिपोर्टिंग, खुले आँकड़े और बेहतर सांख्यिकीय प्रशिक्षण जैसे उपाय सुझाए गए हैं [45]। ये उपाय एक साथ पद्धतिगत और नैतिक हैं। पारदर्शिता जितनी बढ़ती है, कदाचार की गुंजाइश उतनी ही घटती है।

सामाजिक महत्व: शोध का अंतिम लाभार्थी समाज है, और समाज का भरोसा उसकी पूँजी। सहभागियों के प्रति सम्मान और परिणामों के ईमानदार संप्रेषण से यह भरोसा बनता है। जब सहभागी-समुदाय शोध को अपने हित में मानते हैं तो आगे के शोध के लिए सहयोग की भूमिका तैयार होती है।

संस्थागत महत्व: शोध-सत्यनिष्ठा को बढ़ावा देने वाले हस्तक्षेपों की एक कोक्रेन पद्धति-समीक्षा के अनुसार प्रशिक्षण, साहित्यिक चोरी-जाँच सॉफ्टवेयर और नीतिगत उपायों जैसे विभिन्न हस्तक्षेप प्रयोग में हैं, किंतु उनकी प्रभावशीलता के साक्ष्य सीमित और निम्न गुणवत्ता के हैं [46]। इसका अर्थ यह नहीं कि उपाय व्यर्थ हैं। इसका अर्थ यह है कि इन उपायों का कठोर मूल्यांकन स्वयं शोध का विषय होना चाहिए। यूरोप में मार्गदर्शक-दस्तावेजों की विविधता और बिखराव पर हुए अध्ययन से भी संस्थागत असंगति की समस्या स्पष्ट होती है [47]।

व्यावसायिक महत्व: नैतिक शोधकर्ता को लंबे समय में प्रतिष्ठा, अनुदान की विश्वसनीयता और सहकर्मियों का सम्मान मिलता है। इसके विपरीत, कदाचार से पद, प्रकाशन और करियर सब पर संकट आता है।

नैतिक-दार्शनिक महत्व: अंततः नैतिकता का महत्व इस बात में है कि शोध एक मानवीय गतिविधि है, इसलिए वह मानवीय मूल्यों से बँधी है। ज्ञान की खोज मनुष्य की गरिमा की क्रीमत पर नहीं हो सकती।

8. संबंधित शोध-समीक्षाएँ, उनके परिणाम एवं विश्लेषण

इस खंड में उन प्रमुख समीक्षाओं और सर्वेक्षणों का विश्लेषण है जो शोध-नैतिकता के विशिष्ट पहलुओं पर केंद्रित हैं। पहले खंड 6 के व्यापक सर्वेक्षण (तालिका 2) कदाचार की व्यापकता दर्शाते हैं, और इस खंड के अध्ययन तंत्र और संस्थागत आयाम दर्शाते हैं।

8.1 प्रायोजन और परिणाम: लेक्सचिन आदि की व्यवस्थित समीक्षा में उद्योग-प्रायोजित अध्ययनों की तुलना अन्य स्रोतों से प्रायोजित अध्ययनों से की गई। निष्कर्ष यह रहा कि उद्योग-प्रायोजित अध्ययनों के परिणाम और निष्कर्ष प्रायोजक के पक्ष में जाने की संभावना अधिक थी, जबकि उनकी पद्धतिगत गुणवत्ता कम नहीं पाई गई [48]। इसलिए पूर्वाग्रह का स्रोत केवल कमजोर पद्धति नहीं, बल्कि अध्ययन की रूपरेखा, तुलना-समूह के चयन और रिपोर्टिंग के निर्णयों में भी हो सकता है। **विश्लेषण:** यह निष्कर्ष हितों के टकराव के पारदर्शी प्रकटीकरण को केवल औपचारिकता नहीं, बल्कि पाठक के मूल्यांकन का आवश्यक उपकरण सिद्ध करता है।

8.2 शिकारी प्रकाशन: शेन और ब्योर्क ने तथाकथित "शिकारी" (Predatory) खुले-पहुँच वाले प्रकाशकों का दीर्घकालिक अध्ययन किया। उनके अनुसार ऐसे प्रकाशकों के लेखों की संख्या 2010 में लगभग 53,000 से बढ़कर 2014 में लगभग 4.2 लाख हो गई, जो लगभग 8,000 सक्रिय पत्रिकाओं में छपे। इनके लेखक मुख्यतः एशिया और अफ्रीका के थे [49]। **विश्लेषण:** प्रकाशन-दबाव और त्वरित-प्रकाशन की माँग एक ऐसा बाज़ार बनाती है जो सहकर्मि-समीक्षा की गुणवत्ता से समझौता करता है। भारत जैसे बड़े शोध-समुदाय वाले देशों के लिए यह विशेष चुनौती है।

8.3 नैतिकता-समितियों का मूल्यांकन: एबट और ग्रेडी ने अमेरिका में संस्थागत समीक्षा बोर्डों (IRB) पर उपलब्ध अनुभवजन्य साहित्य की व्यवस्थित समीक्षा की। इसमें अलग-अलग स्थानों पर एक ही प्रोटोकॉल पर भिन्न निर्णय, समीक्षा में

समय की देरी और समितियों की वास्तविक प्रभावशीलता पर ठोस साक्ष्य की कमी जैसे बिंदु उभरे [50]। **विश्लेषण:** नैतिकता-समिति का होना पर्याप्त नहीं, उसकी गुणवत्ता, स्वतंत्रता और प्रशिक्षण भी महत्वपूर्ण हैं।

8.4 लेखकत्व की समस्या: विस्तर आदि ने छह उच्च-प्रभाव वाली जैव-चिकित्सा पत्रिकाओं के 896 लेखों के लेखकों का सर्वेक्षण किया। लगभग हर चार में से एक लेख में "मानद लेखन" (जिसने योगदान नहीं दिया उसका नाम) या "भूत लेखन" (जिसने लिखा उसका नाम नहीं) के प्रमाण मिले [51]। **विश्लेषण:** प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में भी यह समस्या पाया जाना दिखाता है कि लेखकत्व के मानदण्ड संस्थागत संस्कृति से प्रभावित होते हैं और केवल संहिता से नहीं सुधरते।

8.5 सूचित सहमति की गुणवत्ता: फ्लोरी और इमैनुएल ने सहभागियों की समझ बढ़ाने वाले हस्तक्षेपों पर 30 अध्ययनों की व्यवस्थित समीक्षा की। सबसे सुसंगत सुधार तब मिला जब अध्ययन-टीम का कोई सदस्य या तटस्थ शिक्षक सहभागी से आमने-सामने अधिक समय तक बात करता है, जबकि केवल लिखित फॉर्म की संरचना बदलने से अपेक्षित लाभ नहीं मिला [52]। **विश्लेषण:** सहमति एक हस्ताक्षर नहीं, एक संवाद-प्रक्रिया है। फॉर्म पर हस्ताक्षर करवा लेना सहमति का प्रमाण हो सकता है, पर समझ का नहीं।

तालिका 3: संबंधित समीक्षाओं का सार एवं निहितार्थ

विषय	अध्ययन	परिणाम	नीतिगत निहितार्थ
कदाचार-व्यापकता	[6], [8], [37]	गढ़त/मिथ्याकरण कम, पर संदिग्ध व्यवहार व्यापक	रोकथाम का जोर व्यापक संदिग्ध व्यवहार पर
प्रकाशन-दबाव	[38], [39]	दबाव और कदाचार में सकारात्मक संबंध; आदर्श-व्यवहार का अंतर	मूल्यांकन-प्रणाली में सुधार
प्रायोजन और पूर्वाग्रह	[48]	प्रायोजक के पक्ष में परिणाम की अधिक संभावना	हितों के टकराव का अनिवार्य प्रकटीकरण
शिकारी प्रकाशन	[49]	2010-14 में लेख-संख्या में लगभग आठ गुना वृद्धि	पत्रिका-मूल्यांकन के मानदण्ड
नैतिकता-समितियाँ	[50]	निर्णयों में विषमता; प्रभावशीलता के साक्ष्य सीमित	समिति-सदस्यों का प्रशिक्षण, गुणवत्ता-आकलन
लेखकत्व	[51]	एक-चौथाई लेखों में मानद/भूत लेखन	योगदान-आधारित लेखकत्व नीति
सहमति की समझ	[52]	आमने-सामने संवाद सबसे प्रभावी	सहमति को प्रक्रिया मानना
पुनरुत्पादनीयता	[41], [42]	बड़े पैमाने पर पुनरावृत्ति-विफलता	खुला डेटा, पूर्व-पंजीकरण
हस्तक्षेपों की प्रभावशीलता	[46]	सीमित, निम्न-गुणवत्ता साक्ष्य	उपायों का कठोर मूल्यांकन

समग्र टिप्पणी: इन समीक्षाओं से तीन स्पष्ट प्रवृत्तियाँ निकलती हैं। पहली, समस्या का बड़ा हिस्सा "बड़े अपराध" में नहीं, "छोटी और बार-बार होने वाली चूकों" में है। दूसरी, कारण व्यक्तिगत दुर्बलता से अधिक संस्थागत प्रोत्साहनों में निहित हैं। तीसरी, समाधान के रूप में लागू उपायों के प्रभाव के ठोस साक्ष्य अपेक्षाकृत कम हैं, जो और अधिक शोध की माँग करता है।

9. शोध के नैतिक मापदण्ड

पूर्वोक्त संहिताओं और साहित्य से निम्नलिखित मापदण्ड उभरते हैं। इन्हें शोध-प्रक्रिया के चरणों से जोड़कर देखना उपयोगी है।

9.1 सत्यनिष्ठा एवं ईमानदारी

आँकड़ों का संकलन, विश्लेषण और रिपोर्टिंग वास्तविक और पूर्ण होनी चाहिए। किसी परिणाम को छिपाना, अनुकूल आँकड़े चुनना या विश्लेषण-विधि को परिणाम देखकर बदलना इसी मापदण्ड का उल्लंघन है। अप्रत्याशित या नकारात्मक परिणाम भी वैज्ञानिक ज्ञान का हिस्सा हैं और उनकी रिपोर्टिंग आवश्यक है [35,45]।

9.2 सूचित सहमति

सहभागी को शोध का उद्देश्य, प्रक्रिया, संभावित जोखिम-लाभ, गोपनीयता की सीमाएँ और किसी भी समय बिना दंड के हटने का अधिकार समझाया जाना चाहिए, और सहमति स्वैच्छिक होनी चाहिए [17,21,22,25]। सहमति के चार तत्व माने जाते हैं: **जानकारी** का प्रकटीकरण, **समझ**, **स्वैच्छिकता** और **क्षमता**। शिक्षा-स्तर, भाषा और शक्ति-संबंध समझ और स्वैच्छिकता पर असर डालते हैं। फ्लोरी और इमैनुएल के निष्कर्ष के अनुसार संवाद के माध्यम से समझ सुनिश्चित करना आवश्यक है [52]। हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में सहमति-पत्र स्थानीय भाषा और सरल शब्दों में हों तथा निरक्षर सहभागियों के लिए निष्पक्ष साक्षी की उपस्थिति में मौखिक सहमति की व्यवस्था हो, जैसा कि ICMR दिशानिर्देश भी सुझाते हैं [25]।

9.3 गोपनीयता एवं निजता

गोपनीयता के प्रश्न में केवल नाम हटा देना ("अनामीकरण") सदैव पर्याप्त नहीं होता। रोशे और सहयोगियों के अध्ययन के अनुसार 15 जनसांख्यिकीय विशेषताओं के आधार पर अमेरिका के लगभग 99.98% व्यक्तियों को किसी भी अपूर्ण डेटासेट में सही-सही पुनः पहचाना जा सकता है [53]। इससे पहले स्वीनी ने दिखाया था कि केवल पिन-कोड, लिंग और जन्म-तिथि से जनसंख्या के लगभग 87% को विशिष्ट रूप से पहचाना जा सकता है [54]। **निहितार्थ:** छोटे समुदायों, दुर्लभ रोगों और सीमित भौगोलिक क्षेत्रों के अध्ययनों में पुनः-पहचान का जोखिम और बढ़ जाता है। इसलिए डेटा-न्यूनीकरण, एन्क्रिप्शन, पहुँच-नियंत्रण और साझाकरण से पूर्व जोखिम-आकलन आवश्यक हैं।

9.4 हानि-निवारण एवं जोखिम-लाभ संतुलन

शोध से सहभागियों को होने वाला जोखिम अपेक्षित लाभ के अनुपात में न्यायसंगत हो और यथासंभव न्यूनतम रखा जाए [21,23]। जोखिम केवल शारीरिक नहीं होते। मानसिक तनाव, सामाजिक कलंक, आर्थिक हानि और सामुदायिक प्रतिष्ठा की क्षति भी उतने ही गंभीर हो सकते हैं। मिलग्राम और फ्रेसबुक प्रकरण [30,31] दर्शाते हैं कि मानसिक और भावनात्मक जोखिम प्रायः कम आँके जाते हैं।

9.5 न्याय एवं वंचित समूहों की सुरक्षा

सहभागियों के चयन में किसी वर्ग का शोषण न हो और शोध के लाभ सबको समान रूप से मिलें। टस्केगी प्रकरण [19] इस सिद्धांत के उल्लंघन का प्रतीक है। बच्चे, गर्भवती महिलाएँ, कैदी, मानसिक रोगी, आर्थिक रूप से कमजोर और अशिक्षित समुदाय जैसे समूहों के लिए अतिरिक्त सुरक्षा उपाय आवश्यक हैं [22,24,25]।

9.6 लेखकत्व एवं श्रेय

आयुर्विज्ञान संपादकों की अंतर्राष्ट्रीय समिति (ICMJE) की सिफ़ारिशों के अनुसार लेखक वही है जिसने (i) शोध की अवधारणा या आँकड़ों में सारवान योगदान दिया, (ii) पांडुलिपि का प्रारूप तैयार किया या उसकी बौद्धिक समीक्षा की, (iii) अंतिम संस्करण को स्वीकृति दी, और (iv) कार्य के सभी पहलुओं के लिए उत्तरदायित्व स्वीकार किया [55]। मानद लेखन, भूत लेखन और अनुचित क्रम [51] इसके उल्लंघन हैं। शोध-छात्रों और सहायकों के साथ न्यायपूर्ण श्रेय-वितरण शैक्षणिक संस्कृति की परीक्षा है।

9.7 प्रकाशन-नैतिकता

प्रकाशन-नैतिकता समिति (COPE) की संहिता संपादकों और प्रकाशकों के लिए निष्पक्ष समीक्षा, गोपनीयता, हितों के टकराव के प्रबंधन और शिकायत-निवारण की प्रक्रिया निर्धारित करती है [56]। समीक्षकों का दायित्व भी उतना ही महत्वपूर्ण है: पांडुलिपि की गोपनीयता रखना, निष्पक्ष और रचनात्मक टिप्पणी देना, और अपनी सीमा से बाहर के विषय पर समीक्षा से इनकार करना। दोहरा प्रकाशन (एक ही कार्य को कई स्थानों पर छपवाना) और "सलामी-टुकड़ों" में प्रकाशन (एक अध्ययन के अनावश्यक टुकड़े करना) भी प्रकाशन-नैतिकता के उल्लंघन हैं [7]।

9.8 मौलिकता एवं साहित्यिक चोरी

दूसरों के विचार, शब्द, आँकड़े या रचना-शैली को बिना उचित श्रेय के अपनाना साहित्यिक चोरी है। रोड्ग की मार्गदर्शिका के अनुसार इसमें शब्दशः नकल, सूक्ष्म शब्द-परिवर्तन (पैराफ्रेजिंग) से मूल संरचना की पुनरावृत्ति, आत्म-साहित्यिक चोरी और स्रोत-उल्लेख में चूक, सभी शामिल हैं [57]। पुपोवाक और फ़ानेली के आँकड़े [36] दिखाते हैं कि यह समस्या व्यापक है। UGC विनियम, 2018 [26] समानता-प्रतिशत के आधार पर दंड-श्रेणियाँ निर्धारित करते हैं, परंतु यह ध्यान रखना होगा

कि सॉफ्टवेयर केवल पाठ-समानता पकड़ता है। **विचारों की चोरी** पकड़ने के लिए मानवीय विवेक अनिवार्य रहता है। प्रभावी रोकथाम का मार्ग है: सही उद्धरण-पद्धति का प्रशिक्षण, स्वयं की भाषा में विचार-निर्माण की आदत, और स्रोत-सूची के प्रति ईमानदार दृष्टि।

9.9 आँकड़ों का प्रबंधन एवं खुलापन

आँकड़ों का सुरक्षित संग्रहण, स्पष्ट अभिलेखन और उचित अवधि तक संरक्षण पुनरुत्पादनीयता के लिए ज़रूरी है। **FAIR सिद्धांत** आँकड़ों को खोजने योग्य (Findable), सुलभ (Accessible), अंतर-संचालनीय (Interoperable) और पुनः-प्रयोज्य (Reusable) बनाने का मार्गदर्शन करते हैं [58]। खुलेपन और निजता में संतुलन ज़रूरी है: खुला डेटा वहीं उचित है जहाँ सहभागी की पहचान सुरक्षित रहे [53,54]।

9.10 हितों का टकराव

वित्तीय, व्यावसायिक या व्यक्तिगत हित शोध की निष्पक्षता को प्रभावित कर सकते हैं [48]। ऐसे हितों का लिखित प्रकटीकरण, स्वतंत्र समीक्षा और आवश्यकतानुसार अध्ययन से अलग रहना सर्वोत्तम व्यवहार है। इसका उद्देश्य हित होने पर लांछन लगाना नहीं, पाठक को उसके आकलन का अवसर देना है।

9.11 पशु-शोध में नैतिकता

रसेल और बर्च का "3R" सिद्धांत, यानी **प्रतिस्थापन** (Replacement: जहाँ संभव हो पशु-रहित विकल्प), **न्यूनीकरण** (Reduction: कम-से-कम पशु) और **परिष्करण** (Refinement: पीड़ा में कमी), पशु-प्रयोगों के लिए आज भी आधारभूत मार्गदर्शन है [59]।

9.12 डिजिटल एवं बिग-डेटा शोध

सोशल-मीडिया और बिग-डेटा शोध में "जो सार्वजनिक रूप से उपलब्ध है, वह नैतिक रूप से उपयोग-योग्य भी है", यह धारणा भ्रामक है। बॉयड और क्रॉफोर्ड चेताते हैं कि आँकड़ों की उपलब्धता नैतिक अनुमति नहीं है और बड़े नमूनों में भी पूर्वाग्रह व निजता की समस्याएँ बनी रहती हैं [60]। ज़ुक और सहयोगियों ने उत्तरदायी बिग-डेटा शोध के लिए दस सरल नियम प्रस्तावित किए हैं, जैसे डेटा के संदर्भ को समझना, पुनः-पहचान के जोखिम को स्वीकार करना और पारदर्शी रहना [61]।

9.13 गुणात्मक एवं सामाजिक शोध में नैतिकता

साक्षात्कार, नृजातीय अध्ययन और मानविकी-शोध में नैतिक प्रश्न औपचारिक अनुमोदन के बाद भी उठते रहते हैं। गिलेमिन और गिलैम ने इन्हें "**नैतिक रूप से महत्वपूर्ण क्षण**" कहा है, जैसे साक्षात्कार के बीच सहभागी का भावुक हो जाना या

अप्रत्याशित निजी जानकारी बाँटना। उनके अनुसार केवल प्रक्रियात्मक अनुमोदन पर्याप्त नहीं, शोधकर्ता की स्वचिंतनशीलता (Reflexivity) आवश्यक है [62]।

तालिका 4: शोध-चरण और नैतिक मापदण्डों का संबंध

शोध-चरण	प्रमुख नैतिक मापदण्ड	व्यावहारिक कार्य
विषय-चयन	सामाजिक मूल्य, न्याय	शोध की आवश्यकता और लाभार्थी की स्पष्टता
प्रस्ताव-लेखन	मौलिकता, हितों का टकराव	उचित स्रोत-उल्लेख, प्रकटीकरण
नैतिक अनुमोदन	स्वतंत्र समीक्षा, जोखिम-लाभ	समिति के समक्ष पूर्ण प्रस्तुति
सहभागी-चयन	न्याय, स्वैच्छिकता	निष्पक्ष चयन, दबाव-मुक्त आमंत्रण
आँकड़ा-संग्रह	सहमति, गोपनीयता	संवाद-आधारित सहमति, सुरक्षित भंडारण
विश्लेषण	सत्यनिष्ठा, पारदर्शिता	पूर्व-नियोजित विश्लेषण-योजना
लेखन	मौलिकता, लेखकत्व	साहित्यिक चोरी से बचाव, योगदान-आधारित श्रेय
प्रकाशन	प्रकाशन-नैतिकता	दोहरे प्रकाशन से बचाव, समीक्षा-प्रक्रिया का सम्मान
आँकड़ों का साझाकरण	FAIR, निजता	पुनः-पहचान का जोखिम-आकलन

10. विभिन्न दृष्टिकोणों से विश्लेषण

10.1 सार्वभौमिकता बनाम सांस्कृतिक सापेक्षता

क्या शोध-नैतिकता के मानक सर्वत्र समान होने चाहिए, या स्थानीय संस्कृति और आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार बदलने चाहिए? एंजेल ने 1997 में विकासशील देशों में एचआईवी के मातृ-शिशु संचरण संबंधी परीक्षणों की आलोचना करते हुए कहा कि जिन परीक्षणों में प्रभावी उपचार-विधि ज्ञात होने के बावजूद नियंत्रण-समूह को प्लेसीबो दिया गया, उनमें दोहरे मानदंड अपनाए गए। उन्होंने इसकी तुलना टस्केगी से भी की [63]। लूरी और वुल्फ़ ने भी इसी आधार पर ऐसे परीक्षणों को अनैतिक बताया [64]। बेनतार ने कहा कि विकासशील देशों में शोध-नैतिकता के लिए स्थानीय क्षमता-निर्माण, समुदाय की भागीदारी और दोहरे मानदंडों का निषेध ज़रूरी है [65]।

विश्लेषण: इस बहस का संतुलित निष्कर्ष यह है कि **मूल सिद्धांत** (सम्मान, हानि-निवारण, न्याय) सार्वभौमिक हों, पर **क्रियान्वयन की पद्धति** स्थानीय संदर्भ के अनुरूप हो। उदाहरण के लिए सहमति की आवश्यकता सर्वत्र है, पर उसे लेने का तरीका साक्षरता, सामुदायिक निर्णय-परम्परा और भाषा के अनुसार बदल सकता है। आर्थिक असमानता के आधार पर निम्न स्तर की सुरक्षा स्वीकार्य नहीं।

10.2 नियमन बनाम स्व-अनुशासन

शॉर्ग ने अमेरिका में सामाजिक विज्ञान पर जैव-चिकित्सा मॉडल की नैतिक समीक्षा-प्रणाली के विस्तार को "नैतिक साम्राज्यवाद" कहा, क्योंकि मौखिक इतिहास, पत्रकारिता-शैली शोध और नृजातीय अध्ययन जैसी विधाओं पर ऐसी प्रक्रियाएँ थोपी गईं जो उनके स्वभाव के अनुकूल नहीं थीं [66]। हैगर्टी ने इसी प्रवृत्ति को "नैतिकता का रेंगना" (Ethics Creep) कहा, जिसमें नैतिक समीक्षा का दायरा लगातार बढ़ता जाता है और नौकरशाही का बोझ बढ़ता है [67]। दूसरी ओर, एबट और ग्रेडी की समीक्षा [50] दिखाती है कि समितियों के निर्णयों में विषमता और प्रभावशीलता के प्रमाण सीमित हैं।

विश्लेषण: एक ओर कठोर औपचारिकता शोध को बोझिल कर सकती है, और दूसरी ओर ढीला नियमन सहभागियों को असुरक्षित छोड़ता है। संतुलित मार्ग जोखिम-आधारित समीक्षा है: न्यूनतम जोखिम वाले अध्ययनों के लिए त्वरित, संक्षिप्त समीक्षा और अधिक जोखिम वाले अध्ययनों के लिए विस्तृत समीक्षा। इसके साथ ही समितियों के सदस्यों को उनके विषय-क्षेत्र का प्रशिक्षण भी ज़रूरी है।

10.3 चिकित्सा-विज्ञान बनाम सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी

अधिकांश नैतिक संहिताएँ चिकित्सा-शोध की आवश्यकताओं से जन्मी हैं [17,21,22]। सामाजिक विज्ञान और मानविकी में जोखिम का स्वरूप भिन्न है। वहाँ शारीरिक हानि प्रायः कम, किंतु प्रतिष्ठा, सामुदायिक संबंध और मानसिक कष्ट जैसे जोखिम अधिक होते हैं [10,62]। हिन्दी-साहित्य, इतिहास या समाजशास्त्र के शोधार्थी भी लोक-स्मृतियों, मौखिक परम्पराओं और सामुदायिक ज्ञान के साथ काम करते हैं, जहाँ ज्ञान के सामुदायिक स्वामित्व और श्रेय का प्रश्न विशेष महत्व रखता है। अतः नैतिक दिशानिर्देशों को विषय-विशिष्ट रूप देना आवश्यक है।

10.4 व्यक्तिगत बनाम संस्थागत उत्तरदायित्व

शोध-कदाचार को प्रायः "कुछ बुरे लोगों की समस्या" माना जाता है, पर मार्टिन्सन आदि और टिज्डंक आदि के साक्ष्य [8,38] बताते हैं कि संस्थागत प्रोत्साहन, जैसे प्रकाशन-संख्या पर आधारित पदोन्नति और अनुदान-प्रतिस्पर्धा, व्यवहार को दिशा देते हैं। अंडरसन आदि की "प्रामाणिक असंगति" [39] भी बताती है कि समस्या व्यक्तिगत मूल्यों से अधिक वातावरण की है। **विश्लेषण:** व्यक्ति और संस्था दोनों के उत्तरदायित्व हैं, पर सुधार का बड़ा हिस्सा संस्थागत मूल्यांकन-प्रणाली के पुनर्गठन से आएगा।

10.5 भारतीय परिप्रेक्ष्य

भारत में शोध का तीव्र विस्तार हुआ है, और साथ ही अकादमिक सत्यनिष्ठा की चुनौतियाँ भी बढ़ी हैं। UGC विनियम [26], ICMR दिशानिर्देश [25] और नई औषधि नियम [27] नियामक ढाँचा देते हैं। पटवर्धन और सहयोगियों ने UGC-अनुमोदित पत्रिकाओं की सूची का आलोचनात्मक विश्लेषण किया और सूची-समावेश को गुणवत्ता की गारंटी मानने की प्रवृत्ति

पर प्रश्न उठाए [68]। यह भारतीय संदर्भ में महत्वपूर्ण है, क्योंकि पदोन्नति और शोध-मूल्यांकन में पत्रिका-सूचियों की बड़ी भूमिका है, और यही सूचियाँ यदि कमजोर हों तो गुणवत्ता की जगह मात्रा को प्रोत्साहन मिलता है।

एक और भारतीय विशेषता भाषा की विविधता है। हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में शोध-नैतिकता की सामग्री का अभाव सामाजिक विज्ञान और मानविकी के बड़े शोधार्थी-वर्ग को नैतिक प्रशिक्षण से दूर रखता है। शोध-नैतिकता का भाषाई लोकतंत्रीकरण अतः एक नैतिक कार्य भी है।

तालिका 5: दृष्टिकोणों का तुलनात्मक सार

बहस	एक पक्ष	दूसरा पक्ष	लेखक का संश्लेषण
सार्वभौमिकता	समान मानक सर्वत्र [63,64]	स्थानीय संदर्भ का महत्व [65]	मूल सिद्धांत समान, क्रियान्वयन संदर्भानुसार
नियमन	कठोर औपचारिक समीक्षा [21,22]	"नैतिकता का रेंगना" [66,67]	जोखिम-आधारित, अनुपातिक समीक्षा
उत्तरदायित्व	व्यक्तिगत नैतिकता [4]	संस्थागत प्रोत्साहन [8,38,39]	दोनों; संस्थागत सुधार प्राथमिक
विषय-क्षेत्र	चिकित्सा-मॉडल [17,22]	सामाजिक विज्ञान की विशिष्टता [10,62]	विषय-विशिष्ट दिशानिर्देश
खुलापन	खुला डेटा [45,58]	निजता [53,54]	सुरक्षित, नियंत्रित खुलापन

11. लेखक की विश्लेषणात्मक स्थापना: "पंच-स मॉडल"

उपर्युक्त साहित्य के संश्लेषण के आधार पर लेखक शोध-नैतिकता के लिए एक सरल, स्मरण-योग्य ढाँचा प्रस्तावित करता है। इसका उद्देश्य नैतिक सिद्धांतों को हिन्दी-भाषी शोधार्थियों के लिए सहज और व्यावहारिक बनाना है। यह मॉडल लेखक की विश्लेषणात्मक प्रस्तावना है और इसे पूर्व-स्थापित सिद्धांतों के समन्वय के रूप में समझा जाना चाहिए। इसके अनुभवजन्य परीक्षण की आवश्यकता भविष्य के शोध के लिए है।

तालिका 6: पंच-स मॉडल

स्तंभ	अर्थ	मूल आधार	शोधकर्ता के लिए प्रश्न
१. सत्य	आँकड़ों, विश्लेषण और रिपोर्टिंग में ईमानदारी	सत्यनिष्ठा [1,5,12,15]	क्या मैंने पूरे और वास्तविक परिणाम बताए?
२. सम्मति	सूचित, स्वैच्छिक और संवाद-आधारित सहमति	स्वायत्तता [16,17,21]	क्या सहभागी ने वास्तव में समझकर सहमति दी?
३. सुरक्षा	हानि-निवारण, गोपनीयता और निजता	अहानिकरता [16,53,54]	क्या मैंने शारीरिक, मानसिक और सामाजिक जोखिम कम किए?

४. सुशासन	जवाबदेही, पारदर्शिता, लेखकत्व और हितों का प्रकटीकरण	उत्तरदायित्व [28,29,55]	क्या मेरे निर्णय जाँच के लिए खुले और श्रेय न्यायपूर्ण हैं?
५. समाज-हित	न्याय, लाभ-वितरण और सामाजिक मूल्य	न्याय, उपकारिता [21,23,24]	क्या शोध का लाभ उसी समाज तक पहुँचेगा जिससे मैंने सीखा?

मॉडल की विशेषताएँ:

- **सरलता:** पाँच शब्द, जो शोध के हर चरण पर पूछे जा सकते हैं।
- **भारतीय मूल्य-बोध से संगति:** "सत्य" और "समाज-हित" जैसे स्तंभ भारतीय चिंतन के निकट हैं [12,15], जबकि "सम्मति" और "सुरक्षा" वैश्विक संहिताओं की आधारशिला हैं [17,21].
- **लचीलापन:** इसे चिकित्सा, सामाजिक विज्ञान, मानविकी और डिजिटल शोध, सब में लागू किया जा सकता है।
- **शिक्षण-उपयोगिता:** शोध-पद्धति के पाठ्यक्रमों में इसे चर्चा-ढाँचे के रूप में अपनाया जा सकता है।

सीमा: यह मॉडल नियामक आवश्यकताओं का विकल्प नहीं, पूरक है। औषधि-परीक्षण जैसे क्षेत्रों में वैधानिक प्रावधानों [27] का पालन अनिवार्य रहेगा।

12. चुनौतियाँ एवं सुझाव

12.1 प्रमुख चुनौतियाँ

- **प्रकाशन और मूल्यांकन का दबाव:** मात्रा-आधारित मूल्यांकन गुणवत्ता से समझौते को प्रोत्साहित करता है [38,68]।
- **प्रशिक्षण का अभाव:** अनेक शोधार्थियों को औपचारिक नैतिक प्रशिक्षण नहीं मिलता, और हस्तक्षेपों की प्रभावशीलता पर भी स्पष्ट साक्ष्य कम हैं [46]।
- **भाषाई अंतराल:** हिन्दी और क्षेत्रीय भाषाओं में सामग्री की कमी।
- **समितियों की गुणवत्ता:** निर्णयों में विषमता और सदस्यों के प्रशिक्षण की कमी [50]।
- **शिकारी प्रकाशन:** निम्न-गुणवत्ता की पत्रिकाओं का बाजार [49]।
- **डिजिटल शोध की नई चुनौतियाँ:** निजता, पुनः-पहचान और सहमति के नए प्रश्न [53,60,61]।

12.2 सुझाव

- **पाठ्यक्रम में अनिवार्य समावेश:** शोध-पद्धति के पाठ्यक्रमों में शोध-नैतिकता को केंद्रीय इकाई बनाया जाए, जिसमें प्रकरण-अध्ययन, वाद-विवाद और व्यावहारिक अभ्यास हों।
- **हिन्दी और क्षेत्रीय भाषाओं में सामग्री:** दिशानिर्देशों, सहमति-पत्रों के नमूनों और प्रशिक्षण-सामग्री का अनुवाद व निर्माण।

- **मूल्यांकन-प्रणाली में सुधार:** प्रकाशन-संख्या की जगह गुणवत्ता, पुनरुत्पादनीयता और खुले आँकड़ों को प्रोत्साहन [45]।
- **जोखिम-आधारित नैतिक समीक्षा:** अनुपातिक समीक्षा-व्यवस्था और समिति-सदस्यों का नियमित प्रशिक्षण [50,66,67]।
- **योगदान-आधारित लेखकत्व नीति:** योगदान का स्पष्ट उल्लेख और मानद/भूत लेखन पर निषेध [51,55]।
- **साहित्यिक चोरी की समग्र नीति:** केवल सॉफ्टवेयर-जाँच पर निर्भर न रहकर शिक्षा, संवाद और मार्गदर्शक की सक्रिय भूमिका [26,57]।
- **पूर्व-पंजीकरण और पारदर्शिता:** जहाँ संभव हो, शोध-योजना का पूर्व-पंजीकरण और विश्लेषण-प्रक्रिया की पारदर्शिता [45]।
- **हस्तक्षेपों का मूल्यांकन:** नैतिकता-प्रशिक्षण और नीतियों की प्रभावशीलता का कठोर शोध [46]।
- **भारतीय अनुभवजन्य शोध:** भारत में शोध-कदाचार और संदिग्ध व्यवहार की व्यापकता पर बड़े पैमाने के अध्ययन।
- **सुरक्षित शिकायत-तंत्र:** ऐसा तंत्र जो शिकायत करने वाले की सुरक्षा और निष्पक्ष जाँच सुनिश्चित करे [28,56]।

13. निष्कर्ष

यह अध्ययन दर्शाता है कि शोध में नैतिकता कोई बाहरी अनुशासन या नौकरशाही की औपचारिकता नहीं, बल्कि शोध की वैधता और समाज के भरोसे की पूर्व-शर्त है। अध्ययन के मुख्य निष्कर्ष निम्नलिखित हैं:

- **ऐतिहासिक निष्कर्ष:** शोध-नैतिकता की संहिताएँ त्रासदियों और अन्याय की प्रतिक्रिया में विकसित हुई [17-22]। भारतीय चिंतन-परम्परा में सत्य, अहिंसा और साधन-शुद्धि की अवधारणाएँ इसकी वैचारिक पूर्वपीठिका के रूप में मौजूद हैं [12-15]।
- **आवश्यकता का निष्कर्ष:** साक्ष्य बताते हैं कि गढ़त और मिथ्याकरण अपेक्षाकृत कम (लगभग 2-4%) किंतु संदिग्ध शोध-व्यवहार अत्यंत व्यापक (लगभग 34-51%) हैं [6,35,37]। पुनरुत्पादनीयता का संकट इसका सामूहिक परिणाम है [41,42]।
- **कारणों का निष्कर्ष:** समस्या की जड़ें व्यक्तिगत दुर्बलता से अधिक संस्थागत प्रोत्साहनों, अपर्याप्त प्रशिक्षण और बिखरे मार्गदर्शन में हैं [38,39,47]।
- **मापदण्डों का निष्कर्ष:** नैतिक मापदण्ड शोध के प्रत्येक चरण पर लागू होते हैं और उनके प्रभावी क्रियान्वयन के लिए संवाद-आधारित, संदर्भ-संवेदनशील और जोखिम-अनुपातिक दृष्टि चाहिए [52,62,66]।
- **दृष्टिकोणों का निष्कर्ष:** सार्वभौमिकता बनाम सापेक्षता, नियमन बनाम स्व-अनुशासन जैसे विवादों का समाधान "या तो-या" में नहीं, बल्कि संतुलित संश्लेषण में है [63-67]।
- **प्रस्तावित मॉडल:** पंच-स मॉडल (सत्य, सम्मति, सुरक्षा, सुशासन, समाज-हित) सिद्धांतों को व्यावहारिक और स्मरणीय रूप देने का एक प्रयास है, जिसका अनुभवजन्य परीक्षण भविष्य के अध्ययनों का विषय है।

अंततः नैतिक शोध का अर्थ केवल नियमों का पालन नहीं, बल्कि यह प्रश्न सदा पूछते रहना है कि हम जो जान रहे हैं, वह किस क्रीमत पर और किसके हित में जाना जा रहा है। जैसा गांधी जी का "साध्य और साधन" का सूत्र सिखाता है, ज्ञान का उद्देश्य जितना पवित्र हो, उसकी प्राप्ति का मार्ग भी उतना ही पवित्र होना चाहिए [15]।

संदर्भ सूची

1. Merton RK. *The sociology of science: theoretical and empirical investigations*. Storer NW, editor. Chicago: University of Chicago Press; 1973.
2. Kothari CR. *Research methodology: methods and techniques*. 2nd rev ed. New Delhi: New Age International; 2004.
3. Resnik DB. *The ethics of science: an introduction*. London: Routledge; 1998.
4. Shamoo AE, Resnik DB. *Responsible conduct of research*. 3rd ed. New York: Oxford University Press; 2015.
5. Steneck NH. *Fostering integrity in research: definitions, current knowledge, and future directions*. *Sci Eng Ethics*. 2006;12(1):53-74.
6. Fanelli D. *How many scientists fabricate and falsify research? A systematic review and meta-analysis of survey data*. *PLoS One*. 2009;4(5):e5738.
7. Fang FC, Steen RG, Casadevall A. *Misconduct accounts for the majority of retracted scientific publications*. *Proc Natl Acad Sci U S A*. 2012;109(42):17028-33.
8. Martinson BC, Anderson MS, de Vries R. *Scientists behaving badly*. *Nature*. 2005;435(7043):737-8.
9. Bryman A. *Social research methods*. 4th ed. Oxford: Oxford University Press; 2012.
10. Israel M, Hay I. *Research ethics for social scientists*. London: SAGE Publications; 2006.
11. Iphofen R, editor. *Handbook of research ethics and scientific integrity*. Cham: Springer; 2020.
12. Radhakrishnan S. *The principal Upanishads*. London: George Allen & Unwin; 1953.
13. Sharma PV, editor. *Charaka Samhita: text with English translation*. Varanasi: Chaukhambha Orientalia; 1981.
14. Sharma PV, editor. *Sushruta Samhita: with English translation of text*. Varanasi: Chaukhambha Visvabharati; 1999.
15. Gandhi MK. *An autobiography or the story of my experiments with truth*. Ahmedabad: Navajivan Publishing House; 1927.
16. Beauchamp TL, Childress JF. *Principles of biomedical ethics*. 7th ed. New York: Oxford University Press; 2013.
17. *The Nuremberg Code*. *BMJ*. 1996;313(7070):1448.
18. Beecher HK. *Ethics and clinical research*. *N Engl J Med*. 1966;274(24):1354-60.
19. Brandt AM. *Racism and research: the case of the Tuskegee Syphilis Study*. *Hastings Cent Rep*. 1978;8(6):21-9.
20. Rothman DJ. *Ethics and human experimentation: Henry Beecher revisited*. *N Engl J Med*. 1987;317(19):1195-9.
21. *National Commission for the Protection of Human Subjects of Biomedical and Behavioral Research. The Belmont Report: ethical principles and guidelines for the protection of*

- human subjects of research. Washington (DC): US Department of Health, Education, and Welfare; 1979.
22. World Medical Association. World Medical Association Declaration of Helsinki: ethical principles for medical research involving human subjects. *JAMA*. 2013;310(20):2191-4.
 23. Emanuel EJ, Wendler D, Grady C. What makes clinical research ethical? *JAMA*. 2000;283(20):2701-11.
 24. Council for International Organizations of Medical Sciences. International ethical guidelines for health-related research involving humans. Geneva: CIOMS; 2016.
 25. Indian Council of Medical Research. National ethical guidelines for biomedical and health research involving human participants. New Delhi: ICMR; 2017.
 26. University Grants Commission. UGC (Promotion of academic integrity and prevention of plagiarism in higher educational institutions) regulations, 2018. New Delhi: The Gazette of India; 2018.
 27. Ministry of Health and Family Welfare, Government of India. New Drugs and Clinical Trials Rules, 2019. New Delhi: The Gazette of India; 2019.
 28. Resnik DB, Shamoo AE. The Singapore Statement on Research Integrity. *Account Res*. 2011;18(2):71-5.
 29. ALLEA. The European code of conduct for research integrity: revised edition. Berlin: ALLEA – All European Academies; 2017.
 30. Milgram S. Behavioral study of obedience. *J Abnorm Soc Psychol*. 1963;67(4):371-8.
 31. Kramer ADI, Guillory JE, Hancock JT. Experimental evidence of massive-scale emotional contagion through social networks. *Proc Natl Acad Sci U S A*. 2014;111(24):8788-90.
 32. Verma IM. Editorial expression of concern: experimental evidence of massive-scale emotional contagion through social networks. *Proc Natl Acad Sci U S A*. 2014;111(29):10779.
 33. The Editors of The Lancet. Retraction—Ileal-lymphoid-nodular hyperplasia, non-specific colitis, and pervasive developmental disorder in children. *Lancet*. 2010;375(9713):445.
 34. Kennedy D. Editorial retraction. *Science*. 2006;311(5759):335.
 35. John LK, Loewenstein G, Prelec D. Measuring the prevalence of questionable research practices with incentives for truth telling. *Psychol Sci*. 2012;23(5):524-32.
 36. Pupovac V, Fanelli D. Scientists admitting to plagiarism: a meta-analysis of surveys. *Sci Eng Ethics*. 2015;21(5):1331-52.
 37. Gopalakrishna G, ter Riet G, Vink G, Stoop I, Wicherts JM, Bouter LM. Prevalence of questionable research practices, research misconduct and their potential explanatory factors: a survey among academic researchers in The Netherlands. *PLoS One*. 2022;17(2):e0263023.
 38. Tijdsink JK, Verbeke R, Smulders YM. Publication pressure and scientific misconduct in medical scientists. *J Empir Res Hum Res Ethics*. 2014;9(5):64-71.
 39. Anderson MS, Martinson BC, De Vries R. Normative dissonance in science: results from a national survey of U.S. scientists. *J Empir Res Hum Res Ethics*. 2007;2(4):3-14.
 40. Bouter LM, Tijdsink J, Axelsen N, Martinson BC, ter Riet G. Ranking major and minor research misbehaviors: results from a survey among participants of four World Conferences on Research Integrity. *Res Integr Peer Rev*. 2016;1:17.
 41. Baker M. 1,500 scientists lift the lid on reproducibility. *Nature*. 2016;533(7604):452-4.

42. Open Science Collaboration. Estimating the reproducibility of psychological science. *Science*. 2015;349(6251):aac4716.
43. Ioannidis JPA. Why most published research findings are false. *PLoS Med*. 2005;2(8):e124.
44. Smith R. Research misconduct: the poisoning of the well. *J R Soc Med*. 2006;99(5):232-7.
45. Munafò MR, Nosek BA, Bishop DVM, Button KS, Chambers CD, du Sert NP, et al. A manifesto for reproducible science. *Nat Hum Behav*. 2017;1:0021.
46. Marušić A, Wager E, Utrobicic A, Rothstein HR, Sambunjak D. Interventions to prevent misconduct and promote integrity in research and publication. *Cochrane Database Syst Rev*. 2016;4:MR000038.
47. Godecharle S, Nemery B, Dierickx K. Guidance on research integrity: no union in Europe. *Lancet*. 2013;381(9872):1097-8.
48. Lexchin J, Bero LA, Djulbegovic B, Clark O. Pharmaceutical industry sponsorship and research outcome and quality: systematic review. *BMJ*. 2003;326(7400):1167-70.
49. Shen C, Björk BC. 'Predatory' open access: a longitudinal study of article volumes and market characteristics. *BMC Med*. 2015;13:230.
50. Abbott L, Grady C. A systematic review of the empirical literature evaluating IRBs: what we know and what we still need to learn. *J Empir Res Hum Res Ethics*. 2011;6(1):3-19.
51. Wislar JS, Flanagan A, Fontanarosa PB, Deangelis CD. Honorary and ghost authorship in high impact biomedical journals: a cross sectional survey. *BMJ*. 2011;343:d6128.
52. Flory J, Emanuel E. Interventions to improve research participants' understanding in informed consent for research: a systematic review. *JAMA*. 2004;292(13):1593-601.
53. Rocher L, Hendrickx JM, de Montjoye YA. Estimating the success of re-identifications in incomplete datasets using generative models. *Nat Commun*. 2019;10:3069.
54. Sweeney L. Simple demographics often identify people uniquely. Pittsburgh: Carnegie Mellon University, Data Privacy Working Paper 3; 2000.
55. International Committee of Medical Journal Editors. Recommendations for the conduct, reporting, editing, and publication of scholarly work in medical journals. ICMJE; 2019.
56. Committee on Publication Ethics. COPE code of conduct and best practice guidelines for journal editors. Eastleigh (UK): COPE; 2011.
57. Roig M. Avoiding plagiarism, self-plagiarism, and other questionable writing practices: a guide to ethical writing. Rockville (MD): US Office of Research Integrity; 2015.
58. Wilkinson MD, Dumontier M, Aalbersberg IJ, Appleton G, Axton M, Baak A, et al. The FAIR Guiding Principles for scientific data management and stewardship. *Sci Data*. 2016;3:160018.
59. Russell WMS, Burch RL. The principles of humane experimental technique. London: Methuen; 1959.
60. boyd d, Crawford K. Critical questions for big data: provocations for a cultural, technological, and scholarly phenomenon. *Inf Commun Soc*. 2012;15(5):662-79.
61. Zook M, Barocas S, boyd d, Crawford K, Keller E, Gangadharan SP, et al. Ten simple rules for responsible big data research. *PLoS Comput Biol*. 2017;13(3):e1005399.
62. Guillemin M, Gillam L. Ethics, reflexivity, and "ethically important moments" in research. *Qual Inq*. 2004;10(2):261-80.



थाती शोध पत्रिका

अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिक सहकर्मि-समीक्षित, ओपन एक्सेस शोध पत्रिका

ISSN(O) : 2584-2722

वर्ष 1, अंक 2, जनवरी - मार्च 2024

Online Available : <https://thati.net/>

63. Angell M. *The ethics of clinical research in the Third World*. *N Engl J Med*. 1997;337(12):847-9.
64. Lurie P, Wolfe SM. *Unethical trials of interventions to reduce perinatal transmission of the human immunodeficiency virus in developing countries*. *N Engl J Med*. 1997;337(12):853-6.
65. Benatar SR. *Reflections and recommendations on research ethics in developing countries*. *Soc Sci Med*. 2002;54(7):1131-41.
66. Schrag ZM. *Ethical imperialism: institutional review boards and the social sciences, 1965-2009*. Baltimore: Johns Hopkins University Press; 2010.
67. Haggerty KD. *Ethics creep: governing social science research in the name of ethics*. *Qual Sociol*. 2004;27(4):391-414.
68. Patwardhan B, Nagarkar S, Gadre SR, Lakhotia SC, Katoch VM, Moher D. *A critical analysis of the 'UGC-approved list of journals'*. *Curr Sci*. 2018;114(6):1299-303.